[निजी प्रसार के लिए]

सी.एच.आर.आई.

अंक ८

अक्टूबर २०१०

लोक पुलिस

जनतांत्रिक पुलिस के लिए

मासिक पत्रिका

"वर्तमान संरचना को महिलाओं को स्वीकार करना ही होगा..."

आन्ध्रप्रदेश की वर्तमान डी.जी.पी. (फायर व आपातकालीन सेवा) तथा प्रदेश की प्रथम महिला आई.पी.एस. अधिकारी श्रीमति अरूणा बहुगुणा से पुलिसिंग के विभिन्न पहलुओं पर नवाज़ कोतवाल की विशिष्ट बातचीत।

आप पुलिस विभाग के साथ इतने सालों के अपने संबंधों से काफी गौरवान्वित महसूस करती हैं। अस्सिटेंट सुपरिटेंडेंट ऑफ पुलिस से आज डायरेक्टर के पद तक पहुंच गई हैं, क्या यह सफर सहज रहा?

यह सफर कठिन लेकिन आनन्ददायक रहा। कड़ी मेहनत के बाद इसके सुखद फल का आनन्द उठाने का एहसास रहा।

इस सफर की सबसे अच्छी बात आपको क्या लगी?

आन्ध्रा की पहली महिला आई.पी.एस. अफसर होना, इससे एक पथ प्रदर्शक होने का एहसास और एक नयी धरती पर कदम रखने का अनुभव होना। हर कठिनाई का सामना सीधे दिल से करना, एक आकार लेते व इतनी तेजी से बदलते हुए समाज के पहिये का चक्रदन्त होने का एहसास बेहद हर्षित करने वाला रहा है।

इससे जुड़ी सबसे बुरी बात आपके लिए क्या थी?

कुछ नहीं। हांलाकि, जनता की दृष्टि में पुलिस की निम्न छवि निराशाजनक थी।

क्या इस सफर ने आपको किसी हद तक बदल दिया है?

विभिन्न प्रकार के केसों और अलग–अलग माहौल के लोगों के साथ काम करने के बाद मैं अधिक करूणामयी, कम आलोचनात्मक और ज़्यादा समझदार हो गई हूं।

अधिकतर लोग जब महिला पुलिस की बात करते हैं तो वे या तो डॉ. किरण बेदी की बात करते हैं या फिर सीधे तौर पर पुलिसिंग के काम के लिए महिलाओं को नकार देते हैं, इस बारे में आपके क्या विचार हैं?

हां, किरण बेदी जी एक महान आइकन हैं और उन्होंने बहुत गहरा प्रभाव छोड़ा है। जनता में महिला पुलिस की बहुत मांग है लेकिन बदकिस्मति है कि इसके लिए आवाज़ नहीं उठायी जा रही है और यह एक तरह से खामोश ज़रूरत बन चुकी है। सरकारों को इसका विश्वास दिलाने की आवश्यकता है ताकि वे महिलाओं के प्रतिनिधित्व को बढ़ाने के लिए उचित कदम उठायें। महिलाओं ने इस क्षेत्र में श्रेष्ट काम किया है और अब वे अपने सामर्थ्य को साबित करने की अवस्था से आगे बढ़ चुकी हैं।

लोगों के अनुसार पुलिसिंग महिलाओं के लिए नहीं हैं, पर क्या महिलाएं पुलिसिंग के लिए बनी हैं? क्या संगठन की पुरूष प्रकृति महिलाओं को स्वीकार कर सकेगी?

संगठन ने अभी तक वांछित तरीके से कदम आगे नहीं बढ़ाया है आज भी महिलाओं को सजावट का सामान समझता है और इस बात को नज़रअन्दाज़ नहीं किया जा सकता है। अत्यधिक प्रचारित 33 प्रतिशत आरक्षण को शक की नज़रों से देखा जाता है। आज भी महिलाओं को केवल रिसेप्शन पर और टेलिफोन ऑपरेटर के काम पर रखा जाता है या फिर उन्हें उन अवसरों के लिए आरक्षित रखा जाता है जहां केवल महिलाओं से सम्बन्धित मामला हो। महिलाओं को पुलिसिंग की मुख्यधारा या जीवनशैली आवश्यकताओं में लाने की कोई सुव्यवस्थित पद्धति नहीं है।

क्या महिलाएं पुलिस प्रशासन, प्रबंधन और क्षेत्र में कुछ खास लाती हैं?

मानवीय स्पर्श। समस्याओं और परिस्थितियों को मानवीय समझा जाता है न कि अव्यक्तिगत और भावावेग के बगैर। लगाव गहरा होता है। धैर्य से हमेशा ही बेहतर विश्लेषण करने में आसानी होती है और चीजों के तार्किक अंत को देखने की योग्यता आती है।

क्या पुलिस में महिलाओं को किसी विशिष्ट प्रारूप में ढ़ाला जा रहा है?

हां, कई स्तरों पर। नये तरीके से सोचना काफी कठिन है और कई लोगों का मानना है कि औरतों को कठिन परिस्थितियों में डालना खतरनाक हो सकता है।

दिल्ली और राजस्थान सरकार ने सर्कुलर जारी किया है कि वे क्रमशः 15 और 30 प्रतिशत आरक्षण देंगें। दूसरे राज्यों ने भी प्रावधान बनाए हैं। फिर भी यह देखा जा रहा है कि इन राज्यों में भी केवल 7 प्रतिशत ही महिलाएं बल में मौजूद हैं, ऐसा क्यों? इससे कैसे छुटकारा पाया जा सकता है?

भर्ती का आंकड़ा काफी कम है और यह बहुत अन्तराल के बाद होती है। इसलिए जब बहुत सीमित भर्ती होती है तो वरिष्ठ अधिकारी निर्धारित 15–30 प्रतिशत महिलाओं को लेने में अनिच्छुक होते हैं और पुरूषों को लेना अधिक पसन्द करते हैं क्योंकि उनके अनुसार वे बेहतर प्रदर्शक होते हैं। एक अनुभव यह भी है कि महिलाएं विभाग पर एक जिम्मेदारी हो जाएंगी और विभाग को इनके कारण कई तरह की कठिनाईयों से गुज़रना पड़ेगा।

यह केवल तभी ठीक हो सकता है जब कानून बनाया जाए और उसे कठोरता से लागू किया जाए। अगर भर्ती नियमित अन्तराल में आरक्षण के साथ होती रही तो भी निर्धारित प्रतिशत तक पहुंचने में कई साल लग जाऐंगे।

क्या इस बात का कोई सबूत मौजूद है कि महिलाओं की शिकायत का महिला पुलिसकर्मी बेहतर तरीके से जवाब देती हैं?

मुझे ऐसे किसी विशिष्ट आंकड़े के मौजूद होने की जानकारी तो नहीं है, लेकिन आम तौर पर औरतों को बेहतर श्रोता माना जाता है – उनकी सहानुभूती अकसर ज़ाहिर हो जाती है।

क्या सभी थानों में महिलाओं को चाहे वे पुलिस हों, पीड़ित हों या आरोपी हों एक अलगाव के वातावरण में रहना पड़ता है?

थाने में स्टाफ तुलनात्मक रूप से कम संख्या में होते हैं इसलिए महिलाओं को अलग रखने की आदत हो जाती है। फिर भी, अगर निर्णायक का रूझान इस बारे में प्रगतिशील हो तो इस वातावरण से बचा जा सकता है। ऐसे कई थाने और युनिट हैं जहां महिला पुलिसकर्मी दूसरे पुरूषकर्मियों के साथ खुशी से मिल–जुल कर अपना काम करती हैं।

पीड़िता और आरोपियों को यथासम्भव दुर्व्यवहार, शोषण और उत्पीड़न से रोकने के लिए अलग रखा जाता है।

हाल ही में आयोजित चौथे राष्ट्रीय महिला पुलिस कॉनफ्रेंस के दौरान दबे शब्दों में महिला कांस्टेबुलरी द्वारा सहे जा रहे विभिन्न प्रकार के शोषण और भेद–भाव की चर्चा सुनने को मिली। उनकी आपसी बातचीत से यह भी ज्ञात हुआ कि वे अपने वरिष्ठ अधिकारियों से इसकी चर्चा या शिकायत करने से डरती हैं और कहीं न कहीं खुद को यह समझाने की कोशिश में लगी हैं कि यह सब पुलिस संस्कृति का अंग है और उन्हें इन बातों का आदी हो

श्रीमति अरूणा बहुगुणा

जाना चाहिए। मुझे उनकी बातों से ऐसा बिल्कुल भी नहीं लगा कि महिलाओं को अपनी बात रखने का अवसर मिला है और जो पुरूष मज़बूत पदों पर हैं वे उनके प्रति हो रहे भेदभाव और शोषण पर उतना ध्यान दे रहे हैं जितनी आवश्यकता है।

आजकल पुलिसबल में दुर्व्यवहार इतनी आम बात नहीं है क्योंकि महिलाओं की संख्या बढ़ी है और वे आवाज़ भी उठाने लगी हैं। मैं इस बात से इंकार नहीं कर रही हूं कि अभद्र व्यवहार के केस नहीं हैं, लेकिन यह असामान्य है और निशिचत रूप से स्वीकार्य नहीं है। पुरूष चिन्तित हो जाते हैं जब ऐसे आरोप उनकी नज़र में आते हैं। हांलाकि, बहुत से पुरानी पीढ़ी के अधिकारियों की एक निश्चित धारणा है जिसे बदलना असंभव तो नहीं लेकिन बेहद कठिन होगा।

एक बार मुझसे एक डी.जी.पी. ने कहा कि पुलिसिंग महिलाओं के लिए नहीं है और शहरी व पश्चिमीवादी महिलाओं के मन में यह गलत धारणा बन गई है कि पुलिसिंग उनके लिए आसान है। जबकि उन्हें इसमें आने से पहले अच्छी तरह सोच लेना चाहिए। उनकी बात सुनकर मुझे काफी गुस्सा भी आया था लेकिन वह एक बुरा अपवाद थे न कि नियम।

विशाखा निर्णय के अनुसार सभी थानों और युनिट में कार्यस्थल पर यौन शोषण के मामलों की सुनवाई के लिए समितियों का गठन होना चाहिए। क्या आपके विचार में यह प्रचलन सर्वत्र लागू किया गया है?

इस प्रकार की समितियों का गठन कर दिया जाता है लेकिन इन्हें आवश्यक अंग नहीं दिये जाते जिससे कि वे आदेश का पालन कर सकें या मुजरिम को सज़ा दिला सकें।

(शेष पृष्ट ४ पर)

पुलिस, प्रजातंत्र और कानून का राज

प्रजातंत्र, सरकार और जीवन की शैली के रूप में भारत में आज भी नया है। हमारे दूरदर्शी राज नेताओं ने नयी व्यवस्था की स्थापना से इस बात की आशा की थी कि इससे परंपरागत भारतीय मान्यताओं और प्रवृत्तियों की पुनः स्थापना होगी और यह आधुनिकता, तार्किकता और वैज्ञानिक स्वभाव लाएगी। लेकिन इस तेज बदलाव ने जोकि पूराने धार्मिक और अध्यात्मिक विश्वास से अलग था लोगों में घबराहट, टकराव और दरार पैदा कर दिया।

हांलाकि एक सामंतशाही, परम्पराओं और गहरी धार्मिक भावनाओं से जुड़े समाज में प्रजातंत्र को जड़ से जमाना एक कमजोर पेबन्द की तरह था। फिर भी, भारत ने इसे सुरक्षित रखा है जबकि दूसरे एशियाई और अफ्रीकी देशों ने या तो इसे छोड़ दिया है या विकृत रूप में अपनाया है।

हांलाकि इसमें कई विकृतियां पैदा हुई, भारत ने इस सबसे अधिक कारगर राजनैतिक व्यवस्था को अति विशिष्ट रूप से इस विविध व बहुल समाज में सम्भाल कर रखा है।

प्रजातंत्र का एक विशेष गुण है 'कानून का राज' और 'कानून के समक्ष समानता का सिद्धांत'। कानून के राज का सीधा अर्थ है किसी व्यक्ति के आदेश या मर्जी के अनुसार नहीं बल्कि कुछ ऐसे उचित नियमों का पालन करके जीवन यापन किया जाए जो सब पर समान रूप से लागू हो।

न्यायपालिका ने बार–बार इस बात पर ज़ोर दिया है कि यह हमारे देश में संगठित शासन का प्रमुख सिद्धांत है। न्यायपालिका द्वारा ऐसी घोषणाओं तथा संवैधानिक विशेषज्ञों द्वारा नियमित रूप से याद दिलाए जाने के बावजूद वास्तविक तौर पर 'कानून के समक्ष समानता' का सिद्धांत इसके पालन से अधिक उल्लंघन के रूप में दिखाई देता है। भारतीय शासक वर्ग, राजनैतिज्ञ और नौकरशाही दोनों ही अमीर, शक्तिशाली और प्रभावशाली भाग के तौर पर प्रजातंत्र के इस प्रमुख सिद्धांत के अनादर में सहायक रहे हैं।

'कानून के राज' को सबके लिए वास्तविकता बनाने में पुलिस की प्रमुख भूमिका है। कभी–कभी वे इस बात को नहीं समझते कि इस संगठन की आवश्यकता है कि वे 'कानून के राज' का कठोरता से पालन करें। इस बात को ध्यान में रखते हुए कि पुलिस अधिदेश के अंतर्गत हर चीज़ से बढ़ कर 'कानून के राज' को बनाए रखने की बात कही गई है। भविष्य में कानून लागू करने और अपराध नियंत्रण करने का क्या तरीका होगा इसे संबोधित करना और इसका मुल्यांकन करना आवश्यक है ।

पुलिस नेतृत्व, राजनैतिज्ञों, विद्वानों और आम जनता को यह शीघ्र ही गम्भीरतापुर्वक सोचने की आवश्यकता है कि किस प्रकार पुलिस को भारतीय सभ्यता, नई वास्तविकताओं, 'कानून के राज' की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाया जाए ताकि कानून लागू करना स्वयं कानून के अनुपालन, मानवाधिकारों का आनन्द उठाने तथा प्रत्येक नागरिक के लिए बगैर किसी जाति, धर्म, लिंग और अमीर–गरीब के भेद के मूल स्वतंत्रता का आनन्द लेने में सहायक हो सके। हमें पुलिस के ढ़ांचे और कार्य–पद्धति का ईमानदारी से तथा मिडिया, राजनेता, न्यायपालिका और जनता द्वारा बनाई गई छवि से परे हटकर मुल्यांकन करना होगा।

हमें राजनेताओं की तेज़ी से बदलती हुई सामाजिक पृष्ठभूमि तथा उनकी राजनैतिक विचारधाराओं और पुलिस, न्यायपालिका और मिडिया से 'कानून के राज' के संदर्भ में उनके रिश्तों के स्वरूप के बारे में सोचने की आवश्यकता है।

हमें इस बात को समझने की आवश्यकता है कि किस प्रकार सीमावाद, क्षेत्रवाद, जनजातीय संगठन और स्थानीय सभ्यता पुलिस और न्यायपालिका के काम व गठन और 'कानून के राज' को नया आकार और स्वरूप दे सकते हैं जिससे कि एक परिपक्व प्रजातंत्र बन सकेगा। क्या पुलिस व्यवस्था और न्यायपालिका के निजीकरण या पंचायतीकरण को वर्तमान व्यवथा के विकल्प के रूप में सोचा जा सकता है?

हल जो भी हो, समूची पुलिस बिरादरी – अफसर और कांस्टेबल को संयुक्त रूप से प्रयास करना होगा कि भारतीय पुलिस को वास्तविक अर्थ में नागरिक सहायक और सेवा केन्द्रित बनाया जा सके।

– के.एस.ढ़िल्लो

हथकड़ी पर उच्चतम न्यायालय के दिशा–निर्देश

प्रेम शंकर शुक्ला एक विचाराधीन कैदी था। उसने उच्चतम न्यायालय में टेलीग्राम भेजकर यह शिकायत की कि उसे और उसके कुछ साथियों को पुलिस कोर्ट में पेशी के लिए ले जाते समय ज़बरदस्ती हथकड़ी लगा देती है। शुक्ला ने कहा कि सुनील बत्रा के केस में उच्चतम न्यायालय के निर्देश के बावजूद कि बेड़ी या हथकड़ी केवल तभी लगाई जाए जब कोई व्यक्ति वास्तव में हिंसक प्रवृति का हो या जिसके भाग जाने की आशंका हो। जेल में नियमित रूप से हथकड़ी लगाना और ज़ंजीरों में जकड़ कर रखना आज भी जारी है।

1978 में सुनील बत्रा के केस में उच्चतम न्यायालय ने बेड़ी और हथकड़ी लगाने को साफ़ तौर से वर्जित कर दिया था। 1980 में भी प्रेम शंकर शुक्ला को न्यायालय में याचिका डालनी पड़ी कि हथकड़ियों का उपयोग वर्जित होना चाहिए।

उच्चतम न्यायालय ने इस बारे में कुछ कठोर टिप्पणियां की हैं। इसने कहा है कि कैदियों पर हथकड़ियों और बेड़ियों के उपयोग से बुनियादी मानव सम्मान की गारंटी का उल्लंघन होता है जो कि हमारे संवैधानिक सभ्यता का हिस्सा है और अनुच्छेद 14 (कानून के समक्ष समानता) 19 (मौलिक स्वतंत्रता) और 21 (व्यक्तिगत स्वतंत्रता और जीवन जीने के अधिकार) के अनुरूप नहीं है।

नियमित रूप से कैदियों को हथकड़ी लगाने की निन्दा करते हुए उच्चतम न्यायालय ने कहा कि किसी व्यक्ति को जंजीरों में जकड़ना उसे नीचा दिखाने से भी अधिक बढ़कर है। यह उसे मनुष्यता से वंचित करने जैसा है और इसलिए उसके असली व्यक्तित्व का उल्लंघन करता है।

उन्होंने राज्य के इस तर्क को नकार दिया कि हथकड़ी का उपयोग कैदियों को भागने से रोकने के लिए आवश्यक है। भागने से बचाव के लिए हथकड़ी का उपयोग अनिवार्य करने की ज़रूरत नहीं है। दूसरे तरीके हैं जिनके द्वारा एक पहरेदार किसी बंदी को हथकड़ी और दूसरे लौह यंत्रों के उपयोग में निहित अपमान और क्रुरता के बगैर भी सुरक्षित रख सकता है।

उच्चतम न्यायालय ने दृढ़तापुर्वक कहा कि वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा दिया गया आदेश भी किसी को हथकड़ी लगाने के लिए वैध तर्क नहीं है। इस बात के लिए उचित आधार होना चाहिए कि कैदी इतना खतरनाक और उग्र है कि उसे हथकड़ी के बगैर नियंत्रण में नहीं रखा जा सकता।

उच्चतम न्यायालय ने हथकड़ी पर निम्नलिखित दिशा–निर्देश जारी किये हैं:

1. हथकड़ी का उपयोग केवल तभी किया जाए जब कोई व्यक्तिः
   – गंभीर असंज्ञय अपराधों में शामिल हो, पहले किसी अपराध के लिए दोषी पाया गया हो
   – उग्र स्वभाव का, हिंसक, उपद्रवी या विघ्नकारी है
   – उसकी आत्म हत्या करने की संभावना हो
   – उसके भागने की कोशिश करने की संभावना हो
2. जिस कारण से हथकड़ी लगाई है उसका उल्लेख साफ तौर से 'डेली डायरी रिपोर्ट' में होना चाहिए। उसे न्यायालय में भी अवश्य ही दिखाना चाहिए।
3. न्यायालय में पेश करने के समय अगर कैदी को हथकड़ी लगाने की आवश्यकता हो तो पुलिस को न्यायालय की आज्ञा लेनी ज़रूरी है।
4. मजिस्ट्रेट को कैदी से अवश्य ही पूछना चाहिए कि क्या उस पर हथकड़ी या बेड़ी का उपयोग किया गया है। अगर जवाब हां है तो संबंधित पुलिस अधिकारी को व्याख्या अवश्य देनी होगी।

इस दिशा–निर्देश के 16 वर्षों के बाद एम. पी. द्विवेदी के केस में हथकड़ी पहनाने का वही मुद्दा उच्चतम न्यायालय के समक्ष आया और न्यायालय ने एक बार फिर दोहराया कि हथकड़ी का उपयोग नियमित रूप से नहीं किया जाना चाहिए और प्रेम शंकर शुक्ला केस में दिए गए दिशा–निर्देश की पुनः पुष्टि की।

पुलिस नियमित रूप से हथकड़ी का उपयोग करती है। वे कहते हैं कि अगर हथकड़ी का उपयोग नहीं किया गया तो कैदी भाग जाएंगे। लेकिन बहुत से कैदियों के हथकड़ी के साथ भी भागने की जानकारी है। पुलिस की यह शिकायत है कि उन्हें पर्याप्त संख्या में पहरेदार उपलब्ध नहीं होते इसलिए हथकड़ी लगाना टाला नहीं जा सकता। समस्याओं की जानकारी भली–भांति है और इसका हल कठिन है। लेकिन सच यही रहेगा कि उच्चतम न्यायालय ने उपरोक्त दिशा–निर्देश दिये हैं जिनका पालन होना चाहिए।

हम हथकड़ी लगाने के बारे में आपके विचार जानना चाहेंगे, आप उच्चतम न्यायालय के दिशा–निर्देशों के बारे में क्या सोचते हैं? उच्चतम न्यायालय के दिशा–निर्देशों के बावजूद पुलिस क्यों नियमित रूप से हथकड़ी लगाती है? इस बारे में अपने विचार हमें बताएं।

कैदियों को हथकड़ी लगाना, जंजीरों या रस्सी से बांधना अमानवीय व्यवहार है। हथकड़ी के बारे में नियम यह है कि इसे नियमित रूप से कभी भी नहीं लगाया जाना चाहिए। इसके उपयोग की आज्ञा केवल असाधारण केसों में है वह भी न्यायिक आदेश के साथ, इस आधार पर कि उस व्यक्ति से साफ और वर्तमान खतरा मौजूद है और इस बात की वास्तविक वजह है कि वह भागने की कोशिश करेगा।

– नवाज़ कोतवाल

महिला पुलिसकर्मियों की चौथी राष्ट्रीय चर्चा

यद्यपि पुलिस में महिलाओं की संख्या कम है फिर भी, इस महकमे में उनका प्रभाव और उनकी आवश्यकता बढ़ती जा रही है।
भारतीय पुलिस में कितनी महिलाएं हैं? उन्हें किस तरह का काम सौंपा जाता है? क्या उन्हें पुलिस में भर्ती होने के लिए कुछ मुश्किलों का सामना करना पड़ा? क्या भर्ती के बाद अपना काम करने में उन्हें कुछ दिक्कतों का सामना करना पड़ा? महिला पुलिस अधिकारी की सोच क्या है? क्या वे अपने पुरूष साथियों से अलग सोचती और करती हैं या पूरे महकमे के माहौल में वे भी एक हिस्सा हैं?
ऐसे और कई सवाल न केवल पुलिसकर्मियों के अन्दर परंतु जनता के मन में भी उठते हैं। ऐसे कई सवालों पर चर्चा होती है महिला पुलिसकर्मियों की राष्ट्रीय चर्चा में, जो हर दूसरे साल आयोजित की जाती है।
चौथी राष्ट्रीय चर्चा उड़ीसा में, 15–17 सितंबर को हुई। चर्चा का आयोजन उड़ीसा पुलिस, बी.पी.आर. एन्ड डी और गृह मंत्रालय द्वारा किया गया था। चर्चा में देश भर से, हर स्तर की महिला पुलिसकर्मी आई और खुलकर संवाद में भाग लिया।
इस सम्मेलन का सबसे खूबसूरत पहलु शायद यह रहा कि डी.जी.पी. स्तर की सबसे वरिष्ठ अधिकारी और कांस्टेबल स्तर की महिला पुलिसकर्मियों ने अपने मुद्दे एक मंच पर प्रस्तुत किये, अपनी आशाएं और अपने काम की तरफ लगन को बखुबी वयक्त किया।
इस बार सम्मेलन का शिर्षक था "महिलाएं–पुलिस व्यवस्था में बदलाव का स्रोत"। तीन दिनों तक चली इस खुली चर्चा में इस बात पर विचार किया गया कि महिला पुलिस बदलाव लाने में क्या भुमिका निभाती है, वे उसे और बेहतर कैसे निभा सकती हैं, उनके रास्ते में कौन सी कठिनाईयां आती हैं और उन कठिनाईयों को हटाने के निजी और महकमे के क्या प्रयास हो सकते हैं।
पुलिस की वरिष्ठ और अनुभवी अधिकारियों ने अपने तजुर्बों को बांटा। लेतिका सरण, डी.जी.पी., तमिल नाडु, एक मोटर दुर्घटना का सामना करने के बावजूद सम्मेलन में बोलने आई और उन्होंने कहा कि हर स्तर पर और हर परिस्थिति में एक महिला पुलिसकर्मी समाज में, देश में और दुनिया में 'फर्क' ला सकती है। उन्होंने ऐसी कई घटनाएं सुनाईं जहां एक महिला पुलिसकर्मी की वजह से ही किसी की जान बची, किसी का परिवार बचा, किसी का छोटा सा बच्चा वापस मिल गया। उन्होंने समझाया कि कोई महिला पुलिसकर्मी यह न समझे कि वह किसी विशेष पद या परिस्थिति में और मर्दों के टक्कर के काम–काज में ही अच्छा कर सकती है बल्कि वह जो भी काम अच्छे से करेगी तो उससे बदलाव अवश्य आएगा।
अन्य वरिष्ठ महिला पुलिस अधिकारी जो उपस्थित थीं और सम्बोधन किया – जिजा हरि सिंह, कर्नाटक की डी.जी. होम गार्डस, आंध्र प्रदेश की डी.जी. फायर सेफ्टी श्रीमति अरूणा बहुगुना, अरूणाचल की डी. जी. कंवलजीत देओल और आर.पी. एफ. की जया सिंह चौहान, मंजरी जरूहर, सीमा अग्रवाल और अनुपम कलश्रेष्ट्रा राष्ट्रीय पुलिस अकादमी की निदेशक, सभी दबंग और काबिल पुलिस अफसर मानी जाती हैं। उन सबके बयानों से महिला पुलिसकर्मियों को एक ही संदेश मिला कि – बेशक महिलाओं को कुछ खास दिक्कतों का सामना करना पड़ता है और कई बार उनके साथ महकमें में ही गैर बराबरी का बर्ताव किया जाता है – लेकिन उसके बावजूद ऐसा हर काम जो पुरूष अधिकारी कर सकते हैं, महिला पुलिसकर्मियों ने कर दिखाया है।
चर्चा में सामने आया कि पारिवारिक और सामाजिक मुद्दों में जहां महिला पुलिसकर्मियों की भूमिका बहुत उपयोगी है, वहां जम्मु–कश्मीर जैसी परिस्थितियों में भी महिला पुलिसकर्मियों ने अपना हुनर दिखाया और जनता का विश्वास हासिल किया है।
महिला पुलिसकर्मियों की कुछ समस्याएं सामने आईः

- भर्ती के समय पुरूषों के बराबर ही कद होने के नियम के कारण कई महिलाएं काबिल होते हुए भी भर्ती नहीं हो पातीं।
- महिलाओं की भर्ती कम संख्या में होती है।
- महिला पुलिसकर्मियों को थाने की पोस्टिंग नहीं दी जाती।
- थाने में भी उन्हें क्लैरिकल काम ज्यादा और फील्ड का काम कम दिया जाता है।
- महिला पुलिसकर्मियों को जांच अधिकारी नहीं नियुक्त किया जाता है।
- महिलाओं के साथ यौन शोषण होता है।
- महिलाओं को शौचालय की सुविधा उपलब्ध न कराने की सबसे ज्यादा मुश्किल है।
- महिलाओं को ड्राईवर इत्यादी पदों पर नहीं रखा जाता है।
- महिलाओं के प्रशिक्षण में मोटरसाईकल और जीप ड्राईविंग शामिल नहीं किया जाता।

उपरोक्त सभी समस्याओं पर सुझाव भी आए और इनसे निपटने के अलग–अलग तरीके भी सुनाए गए। बी.पी.आर. एन्ड डी. और गृह मंत्रालय को सुझाव दिये गए कि भर्ती और प्रशिक्षण के मामले में कुछ बदलाव शीघ्र लाए जाएं।
सम्मेलन के अंत में निम्न सुझाव प्रस्तुत किए गएः–

- महिलाओं के लिए पुलिस बल में कम से कम 30 प्रतिशत आरक्षण होना चाहिए।
- बुनियादी प्रशिक्षण के लिए महिलाओं और पुरूषों के पाठ्यक्रम सामान्य होने चाहिए।
- प्रशिक्षण के दौरान ही महिलाओं और पुरूषों के लिए 'जेन्डर संवेदीकरण प्रोग्राम' होने चाहिए।
- सेवा काल में होने वाले प्रशिक्षणों में महिलाओं को भी शामिल करना चाहिए।
- महिला पुलिसकर्मियों को पुलिस कार्यों की मुख्य धारा में लेना जरूरी है।
- महिला और पुरूष पुलिसकर्मियों के लिए समान कैडर होना चाहिए।
- महिला पुलिसकर्मियों को एस. एच.ओ.,एस.डी.पी.ओ.,आई.ओ. इत्यादी के पदों पर नियुक्त किया जाना चाहिए।
- महिला पुलिसकर्मियों के लिए कुछ विशेष सुविधाएं उपलब्ध करानी चाहिए जैसे :– 180 दिनों का मातृत्व/प्रसूती अवकाश, शिशु और बच्चों की देख–रेख अवकाश।
- पुलिस महकमे में उच्चतम न्यायालय द्वारा दी गई कार्य–स्थल में यौन उत्पीड़न रोकने से सम्बन्धित निंदेश "विशाखा दिशा निंदेश" को लागू करना चाहिए।
- महिलाओं के मुद्दों की सुनवाई के लिए एक विशेष इकाई की स्थापना होनी चाहिए।
- महिलाओं को आवश्यकता पड़ने पर स्थिति के अनुरूप कार्य–अवधि उपलब्ध कराना चाहिए।
- महिला पुलिसकर्मियों की राज्य स्तर पर बैठकें होनी चाहिए।
- महिला पुलिसकर्मियों को भर्ती के बाद सही दिशा देने के लिए 'परामर्शदाता' और 'जागरूकता' के कार्यक्रम होने चाहिए।
- महिला पुलिसकर्मियों की जहा तक हो सके पति या परिवार के साथ पोस्टिंग होनी चाहिए।
- सेवा के दौरान कुछ परिस्थितियों का ध्यान रखा जाना चाहिए जैसेः पोशाक और काम की सुविधा।
- सी.पी.ओ. और सी.पी.एम.एफ. की कर्मियों के लिए रिहाईशी मकान की व्यवस्था, बच्चों के लिए बोर्डिंग स्कुलों की व्यवस्था होनी चाहिए, कंप्यूटरों और आपदा प्रबंधन के विषयों पर प्रशिक्षण होना चाहिए, छुट्टी के प्रावधान के लिए भर्ती को 35 प्रतिशत बढ़ाना चाहिए। इनमें महिला अधिकारियों को नियुक्त किया जाना चाहिए।
- पुलिस महकमे के दफ्तरों में एक नोडल अधिकारी होना चाहिए जो महिला कर्मियों की समस्याओं के लिए नियुक्त हो।
- बी.पी.आर. एन्ड डी. में इन विषयों पर शोध और विचार के लिए एक विशेष कक्ष होना चाहिए।
- आधुनिकीकरण की राशी को इन सब मुद्दों की अनुपालन से जोड़ा जाना चाहिए।

अंत में, सम्मेलन का निष्कर्ष यह निकला कि पुलिस में महिलाओं के होने से पुलिस का लोकतांत्रिक और मानवीय चेहरा सामने आता है, भ्रष्टाचार में कमी होती है और आतंकवाद और नक्सल समस्या को संभालने के नये तरीके अपनाये जा सकते हैं।
सबसे बेहतरीन निचोड़ इन शब्दों में कहा गया "ऐसा नहीं है कि महिलाओं को पुलिस महकमे में शामिल होने की जरूरत है बल्कि पुलिस महकमे को महिलाओं की जरूरत है।"
महिलाएं किसी भी क्षेत्र में पीछे नहीं रही हैं तो पुलिस में क्यों रहें? आप अपने विचार हमें बताएं। तीन दिनों तक चली इस चर्चा के बारे में आपको क्या लगता है? पुलिस में और अधिक महिलाओं की भर्ती होनी चाहिए या नहीं? अपने जवाब के कारण से भी हमें अवगत कराएं।

– आभा जोशी

आपके विचार

मैने लोक पुलिस के तीन अंक पढ़े हैं और मेरे विचार में इसे हमारे राज्य के सभी थानों में भेजा जाना चाहिए ताकि पुलिसवालों को अपना दायित्व याद रहे। हमारे यहां लोग थानों में जाने से घबराते हैं। अगर आप किसी राजनैतिक पार्टी से संबंधित हैं या आपके पास थाने में देने के लिए पैसे हैं तो आपका बाल भी बांका नहीं होगा, पैसे दे दें आपके ऊपर कार्यवाही नहीं होगी। दूसरी ओर, अपने गुम हुए मोबाईल की जानकारी देकर उसकी प्राप्ति की रसीद के लिए भी 50–100 रू का चढ़ावा देना ही पड़ता है। इसी प्रकार अगर एफ.आई.आर. दर्ज करानी हो तो भी पैसे होने चाहिए अन्यथा काम नहीं होगा।

पुलिस के साथ–साथ आम आदमी को भी पुलिस संबंधित इन जानकारियों को उपलब्ध कराया जाना चाहिए।

श्री अम्बिका चरण पानी (एडवोकेट), गम्हड़िया, जिला–सरायकेला खर्सवान, झारखण्ड

मैं अपने थाने में भेजे जा रहे लोक पुलिस के सभी अंक को बेहद ध्यान से पढ़ता हूं और चाहता हूं कि अन्य अधिकारी भी इस ओर रूची दिखाएं। इस पत्रिका में ऐसी कई बातें होती हैं जो हमारे स्तर के पुलिसकर्मियों को जाननी चाहिए ।

पिछले एक अंक में डॉ.किरण बेदी द्वारा यह बात कही गई थी कि पुलिस के निचले स्तर पर सही गलत तय करने वाले अधिकारियों की आवश्यकता नहीं होती जोकि बिल्कुल सही है। मेरे विचार में हमारे राज्य में भी कई वरिष्ठ अधिकारी हैं जिनसे हमारी अधिक बात–चीत तो नहीं हो पाती लेकिन उनके विचार भी अगर इस माध्यम से हम तक पहुंचे तो अच्छा रहेगा।

श्री एन.एस.राजपूत, एस.आई. थाना–मुंगवानी, जिला–नरसिंहपुर, मध्य प्रदेश

पुलिस समाचार - हर कोने की हलचल

एफ.आई.आर. न दर्ज करने वालों को दिल्ली उच्च न्यायालय की फटकार

अनुमान है कि आने वाले समय में कम से कम दिल्ली में लोगों को एफ. आई.आर.दर्ज कराने या पुलिस से कोई काम करवाने के लिए अनावश्यक मेहनत या 'सम्बन्ध' नहीं ढूढ़ना पड़ेगा।

दरअसल हाल ही में दिल्ली उच्च न्यायालय को इस मामले में दख़ल देना पड़ा। अपने निर्णय को संतुलित करते हुए उच्च न्यायालय ने इस बात का ध्यान रखा कि जिन लोगों के खिलाफ़ झूठी शिकायत दर्ज कराई जाती है उन्हें अनावश्यक कष्ट न सहना पड़े।

अगस्त के महीने में दिए गए आदेशों में न्यायालय ने पुलिस और निचली अदालतों को शिकायतों पर कार्यवाही करने हेतु 'क्या करें' और 'क्या न करें' की एक सुची जारी की है।

मौखिक शिकायत

हाल के ऐतिहासिक फैसलों की श्रृंखला में पहला निर्णय न्यायाधीश श्री एस.एन. ढ़ींगरा द्वारा दिया गया जिसमें उन्होंने कहा कि अगर किसी व्यक्ति को एफ.आई.आर. दर्ज कराने से संबंधित मजिस्ट्रैट के पास सुनवाई करवानी हो तो इसके लिए लिखित शिकायत दर्ज कराने की आवश्यकता नहीं है। इसलिए अगर कोई पीड़ित अदालत के समक्ष अपराध होने की जानकारी देता है तो न्यायाधीश यह कह कर उसकी अर्जी को खारिज नहीं कर सकते कि पहले वह लिखित शिकायत दे फिर उसका सबूत पेश करे और गवाही दर्ज कराए। उच्च न्यायालय का यह निर्णय मजिस्ट्रैट को बाध्य करता है कि वह पीड़ित का बयान दर्ज करें और अगर बयान से किसी गंभीर अपराध की जानकारी मिलती है तो पुलिस को आदेश दें कि वह एफ. आई.आर. दर्ज करके केस की जांच करे।

कष्ट नहीं होना चाहिए

उच्च न्यायालय ने जहां यह कहा कि एफ.आई.आर. तुरंत दर्ज होनी चाहिए वहीं इसको संतुलित करते हुए यह साफ़ कर दिया कि "शिकायतकर्ता के व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने के बाद तथा उससे इस बारे में प्राथमिक पूछ–ताछ के बाद ही एफ.आई.आर. दर्ज करनी चाहिए अन्यथा नहीं।" उच्च न्यायालय के अनुसार एक निचली अदालत के न्यायाधीश को इस बात से आश्वस्त हो जाना चाहिए कि "शिकायतकर्ता की कहानी सच है न कि किसी के मशवरे पर आधारित"।

एक अलग निर्णय में न्यायाधीश श्री ढ़ींगरा ने कहा कि "कई बार यह देखा गया है कि मजिस्ट्रैट आवेदक के आरोप की सच्चाई के बारे में प्राथमिक पुछ–ताछ के बगैर ही एफ. आई.आर. दर्ज करने का आदेश दे देते हैं। इससे हमेशा ही न्यायिक प्रक्रिया का दुरूपयोग होता है। यह प्रत्येक मजिस्ट्रैट का दायित्व है कि वह यह सुनिश्चित करें कि अदालत का उपयोग किसी को कष्ट देने के हथियार के रूप न किया जाए।"

गिरफ्तारी में जल्दी न करें

एक दूसरे आदेश में, उच्च न्यायालय ने फैसला दिया कि यह आवश्यक नहीं है कि एफ.आई.आर. दर्ज होने के साथ ही गिरफ्तारी भी होनी चाहिए। न्यायाधीश श्री ढ़ींगरा ने कहा कि अकसर यह देखा जाता है कि पुलिस अधिकारी इस बात का सबूत इकट्ठा किए बगैर कि अपराध आरोपी द्वारा ही किया गया है तथा इस अनुमान में कि न्यायालय के आदेश पर एफ.आई.आर. दर्ज की जा रही है इसलिए इसमें कोई गलती नहीं होगी, आरोपी की गिरफ्तारी कर लेते हैं।

एफ.आई.आर. को व्यापार न बनाएं

पुलिस को व्यावसायिक होने का निर्देश देते हुए न्यायाधीश श्री ढ़ींगरा ने कठोर शब्दों में कहा कि अकसर ये देखा गया है कि जहां वास्तविक केस में एफ.आई.आर. दर्ज कराना बहुत मुश्किल होता है वहीं झूठे मामलों में अगर "उचित संबंध" हो तो आसानी से केस दर्ज कराया जा सकता है।

न्यायाधीश श्री ढ़ींगरा ने एक पत्नी द्वारा अपने पति के खिलाफ दर्ज झूठे एफ.आई.आर. को रद्द करते हुए पुलिस को कहा कि वह न्याय हासिल करने की प्रक्रिया को 'फायदेमंद व्यापार' में न बदले।

ऐसा नहीं है कि यह पहली बार है जब अदालत ने एफ.आई.आर.दर्ज करने के बारे में निर्देश दिया है। देखना यह है कि क्या इस बार दिए गए निर्देशों का कोई सकारात्मक प्रभाव होगा या नहीं?

(सौजन्यः इंडियन एक्सप्रेस डॉट कॉम 23 अगस्त 2010)

जीवित उपस्थित हुए मुर्दे

किसी मरे हुए इंसान का ज़िंदा सामने आना खुशी की बात है। लेकिन पंजाब और हरियाणा न्यायालय द्वारा जितने जीवित मुर्दों के केस का संचलन किया जा रहा है वह काफी अजीब है और इन केसों से पुलिस द्वारा अनुसंधान में की गई लापरवाही का पता चलता है।

हाल ही में हत्या के तीन आरोपियों के केस की सुनवाई के समय जिसमें आरोपियों ने पांच साल की सज़ा जेल में काटी थी और कथित 'मृतक' ने दो साल बाद स्वयं कोर्ट में उपस्थित होकर यह बताया था कि वह जिंदा है। मुख्य न्यायाधीश श्री मुकुल मुदगल के नेतृत्व में एक डिवीजन बेंच ने पानीपत पुलिस से कई चुभते हुए सवाल किए। इनसे पूछा कि वे ऐसी लापरवाही किस प्रकार कर सके और यह कि जो निर्दोष किसी जीवित व्यक्ति की हत्या के आरोप में सज़ा काट रहे हैं उसकी ज़िम्मेदारी कौन लेगा?

आश्चर्य की बात तो यह है कि उस समय की कुरूक्षेत्र की एस.पी. ने इस केस के जांच अधिकारी को दोषमुक्त कर दिया था जिसने इन तीन लोगों को हत्या का आरोपी बनाया था। अब, अदालत ने उस एस.पी. को अदालत में हलफ़नामा दायर करके उन कारणों की व्याख्या करने को कहा है जिसके आधार पर इतनी बड़ी लापरवाही बरतने वाले अधिकारी को कार्यवाही के बगैर छोड़ दिया गया था।

उपरोक्त केस के अलावा ऐसे कई और उदाहरण हैं जहां जीवित लोगों की हत्या के आरोप में लोग सज़ा काट रहे होते हैं और फिर कथित मृतक सामने आ खड़ा होता है। ऐसे ही एक केस में अदालत ने पंजाब सरकार को बरनाला ज़िला के पांच लोगों को एक करोड़ रूपये मुआवज़े के तौर पर देने का आदेश दिया है। दरअसल इन लोगों पर जिस व्यक्ति की हत्या का आरोप था वह व्यक्ति किसी दूसरी जगह एक फ़र्ज़ी नाम से रह रहा था।

लोक पुलिस के तीसरे अंक में "अपराध हल करने का सीधा तरीका" शीर्षक से छपे लेख में हमने उत्तर प्रदेश पुलिस द्वारा ऐसी ही लापरवाहियों को उजागर किया था। ऐसी घटना किसी भी राज्य में हो वह सीधे तौर पर वहां के पुलिस–अनुसंधान की कमियों को उजागर करती है। आवश्यकता है कि सभी राज्यों की पुलिस आत्म–निरीक्षण करे कि कहीं वे भी ऐसी ही किसी कहानी का अंश तो नहीं हैं?

(सौजन्यः टाईम्स ऑफ इंडिया डॉट इंडिया टाईम्स डॉट कॉम 23 सितंबर 2010)

...पृष्ट १ का शेष

क्या इस चौथे कॉनफ्रेंस में इस बात से निराशा थी कि पहले कॉनफ्रेंस की सिफारिशें अब तक लागू नहीं हुई हैं? इस मार्ग में क्या बाधाएं रहीं और ऐसी क्या चीज़ है जो बदलाव होने से रोक रही है?

इसमें जो बाधाएं हैं वे पुरूष अधिकारियों की सोच है। हांलाकि कई महिलाएं अपनी योग्यता साबित कर चुकी हैं लेकिन उन्हें आगे बढ़ने का अवसर और वातावरण नहीं मिल सका है।

पुलिस अधिकारी अपनी कमियों को न्यायसंगत बताते हैं लेकिन, उनकी सारी कठिनाईयों को सही मानने के बाद, आपके विचार में ऐसी क्या चीज है जिसे सुधारने से पुलिस बल सही मायने में एक ऐसा अपराध नाशक दस्ता बन सकता है जिस पर जनता का पूरा विश्वास हो?

पुलिस आयोग, जोकि सुधार का संचालन करेगा और यह सुनिशिचत करेगा कि इसका प्रत्येक कदम जनता के मापदण्ड पर साफ, पारदर्शी और निष्पक्ष है। ठीक ढ़ंग से काम करने की आज़ादी और पुलिस के लिए सुरक्षा।

क्या वर्तमान पुलिस संरचना ऐसा करने में समर्थ है? क्या यह और अधिक महिलाओं को स्वीकार करने के योग्य है? क्या महिलाएं पुलिस संस्कृति को बदल पाएंगी?

वर्तमान संरचना आंतरिक ग्रुप प्रतिद्वंद्विता से ग्रस्त है। योगयता को कोई सम्मान नहीं है और देश के कानून को मानने वालों को कोई सुरक्षा नहीं है। हो सकता है आने वाले समय में महिलाएं अधिक निडर और नैतिक रूप से मज़बूत हो जाएं।

वर्तमान संरचना को महिलाओं को स्वीकार करना ही होगा क्योंकि समाज में उनकी आवश्यकता है। महिलाएं पुलिस में गुणों की समझ और सही बातों के लिए आदर लाएंगी ।

आप आज की पुलिस में कौन सी पांच चीजों को बदलना चाहेंगी?

1. असमर्थ, भ्रष्ट छवि
2. अधिक शिक्षित पुलिसकर्मी
3. अधिक महिलाएं
4. बेहतर तरीके से प्रशिक्षित और सुसज्जित पुलिसकर्मी
5. अपना बॉस खुद होना।

अगर आप ही भगवान, सरकार और पुलिस प्रमुख हों, तो यह कैसे करेंगी?

स्वतंत्र, साफ और सही फैसला लेकर, ऐसे बॉस की हां में हां मिलाए बगैर जिनके फैसले हमेशा समाज के हित में नहीं होते हैं। गलत करने वालों को सज़ा दे पाना और योग्य लोगों को ईनाम देना कानून को शब्दों और वास्तविकता में लागू करने के लिए एक प्रेरणा हो सकता है। इसके लिए नये व सही कानून और कौशल की आवश्यकता होगी। साथ ही जन जागरूकता अत्यधिक आवश्यक होगा।

सी.एच.आर.आई., नई दिल्ली कार्यालय
प्रधान संपादकः ज़ीनत मलिक, बी-११७, प्रथम तल, सर्वोदय एन्कलेव, नई दिल्ली:११००१७, भारत
टेलीः +९१ ११ ४३१८ ०२००, फैक्सः +९१ ११ २६८६ ४६८८, info@humanrightsinitiative.org, www.humanrightsinitiative.org